तित्थयर

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra
KOBA. (Dist. Gandhinagar) Pin. 382009.
Phone. 21342/21343. Cod. No. 02712.
~~6417~~

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : जनवरी १९९१ : नवम् अंक

आ.श्री. कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
ना क.

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १४ : अंक ६

जनवरी १९९१

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

उड़ीसा में जैन धर्म २५६

असम में जैन धर्म २७३

त्रिषष्टि शलाका पुरुष

चरित्र २७५

संकलन २८६

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८७

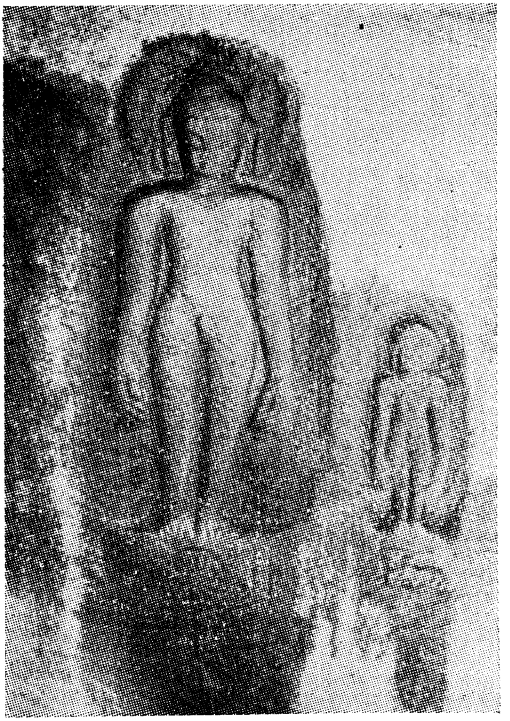

सूर्य पहाड़ स्थित तीर्थंकर मूर्त्तियाँ, असम

उड़ीसा में जैन धर्म

उड़ीसा के साथ जैन धर्म का सम्पर्क कितने दिनों का है ? इस प्रश्न का उत्तर होगा तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के समय से। किन्तु यदि प्राचीन किम्बदन्तियों पर विश्वास किया जाए तो कहना होगा यह सम्पर्क अठारवें तीर्थंकर अरनाथ के समय से है। कारण त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र में कहा गया है दीक्षा लेने के बाद उन्होंने प्रथम भिक्षा राजपुर में ग्रहण की। महाभारत में राजपुर को कलिंग की राजधानी कहा गया है। जो भी हो पार्श्वनाथ के साथ तो कलिंग का घनिष्ठ सम्बन्ध था ही यह तो बहुत से जैन ग्रन्थ में उल्लिखित है। क्षेत्र समास के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ धर्म प्रचार के लिए बंगलादेश के ताम्रलिप्त से होकर उड़ीसा के कोप कटक में गए थे। कोप कटक में धन्य नामक एक गृहस्थ के घर में रहे। प्राच्य-विद्या-महार्णव नगेन्द्रनाथ बसु कहते हैं यह कोप कटक बालेश्वर जिला का आधुनिक कुपारी ग्राम है। ईसा की अष्टम शताब्दी के एक ताम्रफलक से ज्ञात होता है उस समय भी कुपारी कोपारक नाम से परिचित था। भवदेव सूरि के पार्श्वनाथ चरित्र में आया है कि कलिंग को यवनों के हाथों से मुक्त करने के पश्चात् कुशस्थल की राजकुमारी प्रभावती के साथ पार्श्वनाथ का विवाह हुआ। रानी गुम्फा के एक अपहरण दृश्य को बहुत से लोग इसी कहानी का चित्रण समझते हैं। जैन कथा साहित्य में भी कलिंग राज्य का उल्लेख है। चित्रसेन और पद्मावती चरित्र में कहा गया है राजपुत्र चित्रसेन कलिंग के वसन्तपुर पत्तन के राजा वीरसेन का पुत्र था। करकण्डुचरित्र करकण्डु के जीवन का आश्चर्यजनक विवरण देता है। वह पार्श्वनाथ के बाद और महावीर के पूर्व कलिंग का राजा था। इसलिए बहुत लोग उसे पार्श्वनाथ की परम्परा का बतलाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के अठारवें अध्ययन में इसका विवरण है। इस विवरण से जाना जाता है कि जब वह कलिंग में राज्य करता था तब पांचाल में द्विमुख, विदेह में नमि और गान्धार में नग्गई राज्य करते थे। वहीं यह भी कहा गया है कि इन नर-वृषभों ने स्वपुत्र को राज्य देकर श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली थी। बौद्ध कुम्भकार जातक में करकण्डु को प्रत्येक बुद्ध के रूप में स्वीकार किया गया है और राजधानी दण्डपुर बतायी गयी है। इन समस्त कारणों से यही ज्ञात होता है कि कलिंग में जैन धर्म का प्रवर्तन भगवान पार्श्वनाथ ने ही किया। उस प्राचीन काल में कलिंग में

जैन धर्म प्रचलित था यह महाभारत के इस कथन से भी समर्थित होता है कि "अनार्य कलिंग वासियों से दूर रहो कारण वे न वेद मानते हैं न यज्ञ, यहाँ तक कि देवता भी उनके हाथों से बलि ग्रहण नहीं करते।" बौधायन धर्मसूत्र में भी कलिंग को अनार्य देश कहकर अभिहित किया गया है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में महावीर ने जैन धर्म को एक नवीन रूप प्रदान किया। उनके साथ भी उड़ीसा का घनिष्ठ सम्बन्ध था। आवश्यक सूत्र की हरिभद्रीय वृत्ति में कहा गया है कलिंग के राजा महावीर के पिता के मित्र थे। उन्होंने महावीर को कलिंग आकर धर्म प्रचार करने का आह्वान किया था। महावीर ने कलिंग में धर्म प्रचार किया यह आवश्यक सूत्र द्वारा भी समर्थित है। उसमें कहा गया है उन्होंने तोषली और मोषली में धर्म प्रचार किया। कहते हैं तोषली में बहुत से धर्म प्रचारक आए थे और वहाँ की जिनमूर्तियों की रक्षा तोषली के राजा द्वारा होती थी। स्व० डॉ० जायसवाल ने भी कहा है कि सम्राट खारवेल की हाथी गुम्फा शिलालेख की चौदहवीं पंक्ति भी यह संकेत करती है कि महावीर कलिंग आए और कुमारी पर्वत पर स्थित रहकर वहीं से धर्म प्रचार किया। विभिन्न गुम्फाओं के स्तम्भशीर्ष पर अंकित सिंहमूर्ति से भी उन्हें लगता है कि ये दोनों पर्वत उनके चरण स्पर्श से धन्य हुए हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि चम्पानगरी में पालित नामक एक वणिक रहता था। वह भगवान महावीर का शिष्य था। वह श्रावक रूप में निर्ग्रन्थ धर्म का ज्ञाता था। एक बार वह वाणिज्य के लिए जहाज द्वारा पिथुण्ड नगरी में गया। पिथुण्ड कलिंग का एक प्रमुख बन्दर और जैन धर्म का केन्द्र था। इसी पिथुण्ड का उल्लेख खारवेल की हाथी गुम्फा के शिलालेख में भी जैन तीर्थ के रूप में किया गया है।

नन्द राजाओं के समय कलिंग मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। हाथी गुम्फा लेख की छठी और १२वीं पंक्ति में दो बार नन्द राजाओं का उल्लेख हुआ है। ये नन्द राजा कौन थे इसे लेकर पार्थक्य होने पर भी सम्भवतः वे पुराणों में उल्लिखित कलिंग विजेता सर्वक्षत्रान्तक महापद्म नन्द थे। कलिंग को पराजित कर वे विजय स्मारक के रूप में कलिंग जिन को मगध ले गए थे। कलिंग जिन कौन थे यह आज बताना कठिन है। के० पी० जायसवाल और आर० डी० बनर्जी उन्हें तीर्थंकर शीतलनाथ कहते हैं, ए० सी० मित्तल महावीर। किन्तु डॉ० एन० के० साहु ने उन्हें ऋषभदेव कहा है। जो कुछ

भी हो इससे लगता है पार्श्वनाथ प्रवर्तित और महावीर द्वारा परिपुष्ट जैन धर्म उस समय उड़ीसा के राष्ट्रीय धर्म में परिणत हो गया था। नन्दराजा का कलिंग जिन को मगध ले जाना और खारवेल के समय तक उसे नष्ट न कर उपासना करने से यह भी लगता है कि नन्दराज भी जैनधर्मावलम्बी था।

चन्द्रगुप्त मौर्य जैन थे। उनका साम्राज्य बहुविस्तृत होने पर भी कलिंग उसके अन्तर्गत नहीं था। नन्दवंश के दुर्बल हो जाने पर लगता है कलिंगवासी पुनः स्वाधीन हो गए और चन्द्रगुप्त कलिंगवासियों के स्वधर्मी होने के कारण आक्रमण से विरत रहे। उनके पौत्र अशोक ने कलिंग जय किया। वह युद्ध कितना भयानक हुआ था यह उनके १३वें शिलालेख में विवृत है। इस शिलालेख से यह भी जाना जाता है कि उस समय वहाँ ब्राह्मण और श्रमण रहते थे। ये श्रमण जैन थे। लगता है उस समय अशोक भी जैन था। कारण कलिंगवासी स्वधर्मियों की दुर्दशा से हृदय द्रवीभूत होने पर भी मगध पूजित कलिंग जिन को वह उन्हें लौटा न सका। अशोक के पौत्र सम्प्रति ने जैन धर्म के लिए वही किया जो कुछ बौद्ध धर्म के लिए अशोक ने किया। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में सम्प्रतिकालीन कलिंग का उल्लेख है। कलिंग उन्हीं २५½ देशों के अन्तर्गत था जहाँ जैन साधु बिना किसी बाधा के विचरण कर सकते थे।

महामेघवाहन खारवेल के समय को कलिंग का स्वर्णयुग कहा जाता है। स्टार्लिंग द्वारा आविष्कृत और बहुत से पण्डितों द्वारा आलोचित हाथी गुम्फा का शिलालेख खारवेल के सिंहासनारोहण के १३ वर्ष तक का उनके जीवन और कृतित्व का परिचय देता है। उनके समय के विषय में भी पण्डितों का भिन्न-भिन्न मत है। कोई उन्हें ईसा पूर्व चतुर्थ, कोई तृतीय, कोई द्वितीय, कोई प्रथम शताब्दी का सोचते हैं। किन्तु शिलालेख की भाषा, तत्कालीन शिल्पकला आदि की दृष्टि से यदि उसे हम ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का मानें तो कोई अधिक भूल नहीं होगी। तिवस सत को ३०० वर्ष मानकर महापद्मनन्द के समय से काल गणना करने पर भी वह समय ठीक बैठता है।

इस शिलालेख से हम जान पाते हैं कि जैन धर्म खारवेल का व्यक्तिगत धर्म था और उनके समय में जैन धर्म ने कलिंग में यथेष्ट प्रगति की थी। यह शिलालेख तो प्रारम्भ ही होता है अर्हत् और सिद्धों के नमस्कार से। अर्हत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु को लेकर ही जैन पंच परमेष्ठि या नमस्कार मंत्र है। खारवेल जैन होने पर भी युद्ध से कभी परान्मुख नहीं हुए। तभी तो अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में उन्होंने मथुरा से यवनों को

विताड़ित कर जैन धर्म की महती सेवा की। उत्तर भारत में उस समय मथुरा जैनों का एक प्रमुख केन्द्र था। विजयी होकर मथुरा के कल्पवृक्ष का एक पौधा भी वे कलिंग ले आए। राज्याभिषेक के ग्यारहवें वर्ष में गधे द्वारा जोते जाने वाले हल से पिथुण्ड का उद्धार किया। (बैल आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का लांछन होने के कारण लगता है उन्होंने उसका व्यवहार नहीं किया)। राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में नन्दराजा द्वारा अपहृत कलिंग जिन को ३०० वर्षों के पश्चात वहाँ से लाकर कलिंग तथा कलिंग के जैन धर्म की गौरव वृद्धि की। मंचपुरी गुम्फा में तीर्थंकर की उपासना निरत राजा रानी की जो मूर्ति उत्कीर्ण है सम्भवतः वह खारवेल और उनकी पत्नी है। खारवेल जैन श्रावकों के अणुव्रत का पालन करते थे। अतः युद्धयात्रा, पराजितों से शुल्क ग्रहण करने और नृत्यगीत आदि में उन्हें कोई बाधा नहीं थी, किन्तु जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते गए वैसे-वैसे उनकी आध्यात्मिक चेतना जागृत होती गयी। राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में खारवेल का जो रूप हम देखते हैं वह शिलालेख में उत्कीर्ण भिक्षुराज व धर्मराज का रूप है। यह परिवर्तन सम्भवतः मथुरा विजय के पश्चात् घटित हुआ है। लगता है जीवन के अन्तिम दिनों में वे महाव्रतों का पालन कर साधुओं-सा जीवन यापन करते थे। उनकी स्वधर्मी भक्ति और दानवीरता भारत के विभिन्न प्रान्त से जैन आचार्य और पण्डितों को कलिंग में आकृष्ट कर लायी थी। कलिंग में उन्होंने धर्म संगीति (गोष्ठी) का आयोजन भी किया जहाँ ग्रन्थ संकलन आदि का काम भी हुआ था। ऐसा लगता है श्रमण श्वेताम्बर सम्प्रदाय के थे कारण वे श्वेत वस्त्र भी (वास सितानि चिन वातानि) दान करते थे। अर्हत् भक्ति के लिए उन्होंने और उनके परिवार के लोगों ने उदयगिरि और खण्डगिरि में श्रमणों के निवास के लिए ११७ गुम्फाओं का निर्माण करवाया। रानी सिंहपथा के अनुरोध पर उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण भी करवाया था।

स्वधर्म के प्रति उग्र प्रीति रहने पर भी खारवेल ने अन्य धर्मों का आदर कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। उन्होंने हिन्दू देव-देवियों के लिए भी मन्दिरों का निर्माण करवाया था और यति-ऋषि एवं तापसों के निवास की भी व्यवस्था की थी। इसलिए सब उन्हें पाखण्ड पूजक, सकल धर्मोपासक, सब देवायतनों के संस्काराराधक नाम से अभिहित करते थे।

हाथी गुम्फा के लेख और खंडगिरि की मूर्तियों से तत्कालीन जैन धर्म का एक सुन्दर आलेख भी मिलता है। बद्धमंगल, स्वास्तिक, नन्दीपद और वृक्ष चैत्य पूजा ने जैन धर्म में प्रवेश कर लिया था। दोनों ओर गज

सहित लक्ष्मी भी मंगलों में गिने जाने लगे थे। बद्ध मंगल के अनुरूप चित्र जूनागढ़ के जैन गुफाओं के दरवाजे पर भी खुदे हुए देखने में आते हैं। खारवेल के परवर्ती महाराज कुदेवसिरि और कुमार वडुख के समय जैन धर्म ने और भी उन्नति की। उन्होंने मंचपुरी गुम्फा में नीचे की गैलरी तथा पार्श्ववर्ती कक्ष का निर्माण करवाया।

खारवेल के पश्चात् कई सदियों के लिए उड़ीसा का इतिहास अन्धकाराच्छन्न हो गया। उस समय वहाँ जैन धर्म की क्या स्थिति थी कहना कठिन है। ईसा की तीसरी सदी की महाराजाधिराज धर्मदास घर की एक स्वर्णमुद्रा शिशुपालगढ़ को खोदते समय मिली थी। डा० आल्तेकर का मत है कि वे कोई मुरण्ड वंशीय जैन राजा थे। मुरण्डगण जैन धर्मावलम्बी थे।

बौद्ध दाठा वंश से हमें ज्ञात होता है कि कलिंगराज गुहशिव ने (ईसा की चौथी सदी) जैन धर्म परित्याग कर बौद्ध धर्म ग्रहण किया और निर्ग्रन्थ जैनों को कलिंग से विताड़ित कर दिया। विताड़ित होकर वे पाटलिपुत्र के राजा पाण्डु के शरण में चले गए। इस बात से हम जान पाते हैं कि उभय धर्मों के विवाद के कारण किस प्रकार जैन हीनबल हो गए और बाद में शैव और वैष्णव धर्म जनप्रिय होने के कारण जैन धर्म की और भी अवनति हो गयी। किन्तु इतना होने के बावजूद भी जैन धर्म पूर्णतः लुप्त नहीं हुआ। साधारण मनुष्यों के मध्य वह जीवित रहा। कारण सातवीं सदी में चीनी परिव्राजक ह्वेन सांग जब भारत भ्रमण के लिये आया तब भी उसने कलिंग में बौद्धों को छोड़कर अन्य धर्मावलम्बियों में निर्ग्रन्थों की संख्या ही अधिक पायी। शैलोद्भव राजा धर्मराजा के वाणपुर ताम्रफलक में (ईसा के सातवीं सदी) कहा गया है कि उनकी पत्नी रानी कल्याण देवी ने धर्म कार्य के लिए एक-शाटक जैन मुनि प्रबुद्धचन्द्र को कुछ भूमि दान की थी। प्रबुद्धचन्द्र नसीचन्द्र अर्हताचार्य के शिष्य थे। एक-शाटक अर्थात् एक वस्त्रधारी। यह अनुदान केवल शैलोद्भव राजाओं की उदारता ही नहीं बताती है बल्कि इससे यह भी जाना जाता है कि उस समय जैनाचार्य राज्याधिकारियों से भी सम्मानित होते थे। तभी तो राज्य धर्म के परिवर्तित होने पर भी खण्डगिरि और उदयगिरि जैन धर्म के केन्द्र रूप में जनप्रिय था। नवमुनि गुम्फा में उद्योत केशरी का एक शिलालेख (ईसा की ग्यारहवीं सदी) कुलचन्द्र के शिष्य क्षुल्लक शुभचन्द्र का उल्लेख करता है जो देशीगण के गृहकुल के आचार्य थे। जैन गुरुओं के रूप में शुभचन्द्र और कुलचन्द्र का उल्लेख कल्याणी चालुक्य और देवगिरि

के यादवों के लेख में भी मिलते हैं यद्यपि वे नवमुनि गुम्फा के कुलचन्द्र और शुभचन्द्र नहीं है। ललाटेन्दु केशरी गुम्फा के उद्योत केशरी के एक और लेख में भी कहा गया है कि उद्योत केशरी के राज्य के पंचम वर्ष में कुमारी पर्वत पर जीर्ण सरोवर और जीर्ण मन्दिर का पुनरुद्धार किया गया एवं वहाँ चौबीस तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ स्थापित की गयीं। सोम स्वामी शासक के राज्यकाल में जो मुक्तेश्वर मन्दिर निर्मित हुआ उसके वहिर्प्राकार के ऊपर खुदी हुयी तीर्थंकर मूर्त्तियों के द्वारा ही उनके धार्मिक औदार्य का परिचय मिलता है। बालासोर से प्राप्त एक लेख में कुमार सेन नामक एक जैन साधु का नाम ज्ञात होता है जो कि ईसा की १०-११ वीं सदी में वर्तमान थे। श्रीनन्द शिष्य उग्रादित्य के त्रिकलिंग देश के रत्नगिरि पर्वत पर रचित कल्याण कारक स्तोत्र वीर सेन, सिद्ध सेन, दशरथ गुरु और पत्र-स्वामी के साथ एक कुमार सेन का उल्लेख करता है। ईसा की अष्टम शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में जैन धर्म का पुनरभ्युदय हुआ वह उड़ीसा के विभिन्न स्थानों से प्राप्त तीर्थंकर मूर्त्तियों को देखकर कहा जाता है। यह पुनरभ्युदय राष्ट्रकूटों के प्रभाव के कारण हुआ क्योंकि वे जैन धर्म के प्रबल समर्थक थे। राष्ट्रकूट राजा तृतीय गोविन्द ने कलिंग, बंग और भद्रक को जीता था ऐसा दावे के साथ कहा जाता है। किन्तु जैन धर्म का यह पुनरभ्युदय दीर्घकाल तक स्थायी नहीं रहा। कारण परवर्ती काल में वैष्णव धर्म और जगन्नाथ उपासना के प्रादुर्भाव से जैन धर्म और अधिक क्षीण हो गया। धौली पहाड़, वाणी वक्रेश्वर आदि स्थान में ईसा की १२ वीं सदी के शेष भाग में गंगा राजा मदन महादेव ने जैन और बौद्ध श्रमणों की हत्या की ऐसा उल्लेख जगन्नाथ मन्दिर के इतिहास मादला पांजी में मिलता है।

बंगाल में जैन संस्कृति जिस प्रकार सराक सम्प्रदाय में पायी जाती है उसी प्रकार उड़ीसा में भी जैन संस्कृति सराकों में ही बची हुयी है। बालेश्वर जिले के जितने जुलाहा श्रेणी के लोग रहते हैं जिन्हें अश्विनी ताँती कहा जाता है, ये धर्म से सराक हैं। अतः इन्हें सराकी तांती भी कहा जाता है। बालेश्वर जिले में करीबन ५४ हजार सराक रहते हैं। यह संख्या पश्चिम बंगाल के सराकों की संख्या से बहुत अधिक है।

उड़ीसा के कुछ अंचलों में नाथ सम्प्रदाय के मध्य जैन प्रभाव अत्यधिक पाया जाता है। यही नाथ पन्थी दूरवर्ती काल में आरक्षित दास पन्थी और महिमा पंथी इन दो भागों में विभक्त हो गए। बालेश्वर जिले के अधोरी

भी शायद पहले सराक थे। बलभूम के महल्या ग्राम से दो मील दूर एक अंचल में बहुत से सराक रहते थे। वर्तमान में ये विभिन्न सम्प्रदायों में मिल गए हैं।

उड़ीसा के सराकों की विभिन्न प्रकार की पदवियाँ हैं। जैसे—महापात्र, पात्र, बक्त, सांतरा, वर्द्धन, माहात्र, देवता, प्रामाणिक, आचार्य, वेहारा, दास, साओ, मंडल, नायक, सेनापति आदि। इन सब पदवियों में पात्र, नायक, मण्डल आदि पदवी पश्चिम बंग के सराकों में भी पायी जाती है। पश्चिम बंगाल के सराक सम्प्रदाय की भाँति उड़ीसा के सराक सम्प्रदाय में भी किसी प्रकार के ब्राह्मण पुरोहित नहीं है। रंगोनी ताँती, सराकी ताँती स्वयं को ब्राह्मणों से भी अधिक ऊँची जाति का कहते हैं। अतः वे ब्राह्मणों के हाथ का जल भी नहीं पीते। पश्चिम बंगाल के सराकों की तरह उड़ीसा के सराक भी डुमुर में कीड़ा रहता है इसलिये डुमुर नहीं खाते।

उड़ीसा के सराकों के ब्राह्मण पुरोहित नहीं है। इसलिए वे समय-समय पर स्वयं ही जनेउ पहन कर पूजा व विवाहादि सामाजिक अनुष्ठानों का संचालन करते हैं। बहुत से लोग विवाह अनुष्ठानों की समाप्ति पर खण्डगिरि अंचल में जाते हैं।

उड़ीसा के सराकों का मुख्य पेशा पश्चिम बंग के सराकों की तरह ताँत ही है। ये प्रचीनकाल से ताँत बुनने के काम में लिप्त हैं ऐसा नहीं है। सम्भवतः जीवन निर्वाह के लिए ही इन्होंने इस शिल्प को ग्रहण किया है।

सराकी ताँती उड़ीसा के बालेश्वर, कोरापुट आदि के अतिरिक्त विभिन्न स्थानों में इधर-उधर बसे हुए हैं। कटक जिले का आसिया पहाड़, छातिया पहाड़, चान्दोर, जाजपुर, रत्नगिरि, उदयगिरि आदि अंचलों में प्रचुर मात्रा में सराक रहते हैं। इसके अतिरिक्त तिगिरिया, बड़म्बा, बांकी और पुरी जिले के पिंगलि आदि अंचलों में भी ये निवास करते हैं।

जैन पुरातत्व की चर्चा करने पर प्रथम उदयगिरि-खण्डगिरि की ही चर्चा होती है। उड़ीसा के विभिन्न स्थानों में बिखरे जैन पुरातत्वों में खण्डगिरि गुम्फा की मूर्त्तियाँ सबसे प्राचीन लगती हैं। हाथी गुम्फा, जय-विजय गुम्फा आदि अपने शिल्प के लिए विश्व-विख्यात हैं। गुम्फा के द्वार पर कहीं प्रागैतिहासिक युग के हाथी हैं तो कहीं निरावरण सुन्दर नारी··· या कहीं कहानी चित्र खुदे हुए हैं। यह सब मूर्त्तिकला व शिल्पकला खण्ड-गिरि की प्राचीन गुम्फाओं की शिल्प उत्कर्षता और गुरुत्व को बढ़ा देती हैं।

खण्डगिरि उदयगिरि के अलावा कोरापुट जिले के जयपुर, नन्दनपुर और भैरव सिंहपुर में बहुत सी जैन मूर्तियाँ पायी गई है। केओनझाड़ और मयूरभंज के विभिन्न स्थानों में पार्श्वनाथ, ऋषभनाथ और महावीर स्वामी की मूर्तियाँ संग्रहित हैं। उड़ीसा के स्टेट म्युजियम में बालासोर जिले के चारम्पा ग्राम से प्राप्त चार तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। कटक के जैन मन्दिर में भी मध्य युग की बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ संग्रहित हैं। इनमें एक ही फलक में ऋषभनाथ और महावीर हैं, अन्य फलक में भरत बाहुबली आदि शत पुत्रों सहित पद्मासन स्थित ऋषभदेव की मूर्ति विशेष उल्लेख योग्य है। मयूरभंज के बड़साही से दो क्षुद्राकृति चौमुख पाया गया है जिसके चारों ओर चार तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। मयूरभंज के खिंची, वारिपदा, भीमापुर आदि ग्रामों में भी बहुत सी जैन मूर्तियाँ पायी गयी हैं। कटक जिले के जाजपुर में अखण्डलेश्वर मन्दिर और मातृका मन्दिर में बहुत सी जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं।

इसी शहर के नारायण चौक स्थित मन्दिर में अनन्त वासुदेव के रूप में पूजित पार्श्वनाथ खूब सुन्दर हैं। मातृका मन्दिर में कायोत्सर्ग स्थित शान्तिनाथ की त्रिछत्र मूर्ति है जिसकी लम्बाई और चौड़ाई ३२" × १६½" है। इस मूर्ति के दोनों ओर २४ तीर्थंकरों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। दोनों ओर दो चामरधारी और एक ओर दो कलश दूसरी ओर एक उपासक है, मध्य में लंछन है। क्लोराइट पत्थर से बनी यह मूर्ति जैन शिल्पकला का एक उत्कृष्ट निदर्शन है। एक और शान्तिनाथ मूर्ति है (४५" × २२½") जो कि अखण्डलेश्वर मन्दिर के कम्पाउण्ड में रक्षित है। यह भी वैसी ही सुन्दर है। खड्गासन स्थित इस मूर्ति के दोनों ओर ४-४ ग्रह खुदे हुए हैं। केतु की मूर्ति नहीं है। मूर्ति के दोनों ओर चामरधारी और ऊपर दो उड्डीयमान विद्याधर हैं। पादपीठ पर केवल लंछन ही नहीं बांयी ओर दो हस्तियों द्वारा अभिषिक्त कमल में खड़ी लक्ष्मी भी उत्कीर्ण है। इसके दाहिनी ओर एक आदमी खड़ा है और तीन स्त्रियाँ बैठी हुयी उपासनारत हैं। इन मूर्तियों को देखकर कहा जा सकता है कि आज जहाँ शैव क्षेत्र है कभी वह प्रमुख जैन केन्द्र था। प्राची अधित्यका के अतसपुर, लताहरण आदि गाँवों में बहुत सी जैन मूर्तियाँ पायी गयी हैं।

उड़ीसा के प्राचीन साहित्य और संस्कृति पर भी जैन धर्म का असीम प्रभाव है। आज वहाँ जैन धर्म के लुप्त हो जाने पर भी जैन संस्कृति का प्रभाव विभिन्न रूपों में देखा जाता है। मध्ययुग में उड़ीसा के विभिन्न प्रदेशों में भंज वंशीय राजाओं का शासन था। इन राजाओं में कोई वैष्णव

था तो कोई वैश्य। किन्तु उनपर भी जैन संस्कृति का अक्षुण्ण प्रभाव था। इस वंश का एक ताम्र शासन केन्दुआ जिले के उखुण्डा ग्राम में पाया गया है जिसमें भंज वंश के पूर्वजों की उत्पत्ति कोट्टाश्रम नामक स्थान में मयूर के अण्डे से हुयी ऐसा उल्लेख है। यह कोट्टाश्रम जैन हरिवंश पुराण में वर्णित कोटि शिला है। संभवतः यहाँ असंख्य मुनि निवास करते थे इसीलिए इसका यह नाम पड़ा हो। मयूर के अण्डेसे (मयूराण्डं भित्वा) वीरभद्र आदि भंज रूप में उत्पन्न हुए ऐसा कहा जाता है। यह मयूर निश्चय ही साधारण मयूर नहीं है, कारण उससे मनुष्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती थी एवं वह मान्य भी नहीं होती। सोलहवीं सदी में विद्यमान कणिका राजवंशीय हरिचन्दन ने स्वरचित संगीत मुक्तावलि में अपने वंश के परिचय प्रसंग में लिखा है हमारा वंश श्रुतिमयूरिका से उत्पन्न है। यह श्रुति श्रुतदेवी अर्थात् जैन सरस्वती है। जैन परम्परा में सरस्वती का वाहन हंस नहीं, मयूर है। भंज वंश पर जैन प्रभाव का यह एक निदर्शन है।

उपरोक्त ताम्र शासन में वीरभद्र को गणदण्ड कहा गया है गणदण्ड जैन शास्त्रों में प्रयुक्त गणधर, गणी, गणेन्द्र शब्द का पर्यायवाची है।

उत्कल का उत्तरी भाग किसी समय तोषली कहलाता था। इसी तोषली में शैलपुर नामक एक जैन तीर्थस्थल था। विपुला नामक पर्वत वेष्टित इस शैलपुर की कथा जैन साहित्य में भी मिलती है। इसका नामकरण शैलपुर राजगृह के अनुकरण पर किया गया है। यह शैलपुर कहाँ है इतिहासकारों ने यह अनुसन्धान नहीं किया फिर भी केन्दुझर जिले के आनन्दपुर से ८ मील दूर पोडासिंगिगडी नामक जो ग्राम है उससे चिह्नित किया जा सकता है। कारण यहाँ एक वर्ग एक मील परिमित क्षेत्राकार भूमि बहुला पर्वत श्रेणी द्वारा वेष्टित है। अन्य भाग ध्वस्त प्रत्नावशेषों से पहचाना जाता है। यहाँ सौ से अधिक तीर्थंकर एवं यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियाँ इधर उधर बिखरी पड़ी हैं। कोई मूर्ति अर्द्ध प्रोथित, कोई तिर्यक रूप में स्थित है। कोई उत्तरानशायी तो कोई अर्द्धभग्न है। पर्वत पर चढ़ने की सीढ़ी है। वहाँ एक विशाल तीर्थंकर मूर्ति है। वह मूर्ति महावीर की है। यह स्थान तोषली के अन्तर्गत है। अतः निःसन्देह इसे तोषली का शैलपुर कहा जा सकता है। राजगृह शैल वलयवेष्टित होने से राजगृह शैलपुर है। यह स्थान भी इसी प्रकार शैल वेष्टित है। राजगृह के चारों ओर की पर्वतमाला का नाम है विपुला। यहाँ के पर्वत का नाम है बहुला। राजगृह के द्वार देश पर स्थित पर्वत गोलाकार है। यहाँ भी पर्वत वैसा ही गोलाकार है।

इसी से लगता है महावीर का प्रधान धर्म प्रचार केन्द्र राजगृह के अनुकरण पर इस स्थान का नाम शैलपुर रखा गया है। इससे भी उड़ीसा में जैन धर्म की प्राचीनता व प्रभाव का अनुमान सहज ही हो जाता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त साहित्यिक तथ्य भी उत्कल में जैन धर्म की प्राचीनता और प्रभाव घोषित करते हैं।

उड़ीसा के आदिवासियों में 'क्रीड़ा पद्म तोला' गीत गाया जाता है। उस गीत में कहा गया है कंश की पत्नी पद्मावती ने धनित्री ओषा व्रत किया था उसके लिए शतदल कमलकी आवश्यकता थी। कृष्ण को उस कमलको लाने के लिए कालिन्द हृद में प्रवेश करने पर कालीय नागने उन्हें डंस लिया। कृष्ण ने तब उसका मर्दन किया। यह कहानी जैन हरिवंश पुराण से ली गयी है। क्योंकि ऐसी कहानी ब्राह्मण विष्णु पुराण या हरिवंश आदि पुराणों में नहीं मिलती। इसी से जाना जाता है कि जैन हरिवंश पुराण का प्रभाव उड़ीसा के लोक साहित्य में कितना है। यहाँ तक की रसकल्लोलकार दीनकृष्ण ने जैन प्रभावित लोक साहित्य का अवलम्बन लेकर लिखा है—

कुंज विहारी विहरन्ते गोपनगर
कंश आज्ञा आसि लागिला नन्दकु देव कमल शतभार।

केवल लोक साहित्य में ही नहीं उड़ीसा की अति प्राचीन पुस्तक सरला महाभारत में (१४-१५ शतक ?) द्रोपदी स्वयंवर में घूमते हुए चक्र की सन्धि में राधा लक्ष्य भेद करने की जो कथा है वह भी जैन हरिवंश पुराण की है। संस्कृत महाभारत में राधा शब्द का कोई उल्लेख नहीं है।

मध्ययुग में श्री चैतन्य देव के प्रभाव से बंगाल और उड़ीसा में बहुत से ग्रन्थ रचित हुए। इन सब ग्रन्थों में भागवत का स्थान सबसे ऊपर है। उड़ीसा के जगन्नाथ दास की भागवत में ऋषभनाथ की कथा है। इस ग्रंथ के पंचम अध्याय में ऋषभदेव ने अपने सौ पुत्रों को जो उपदेश दिया उसमें श्रमण संस्कृति को ही पकड़ा है—

श्री श्रीऋषभदेव उवाच—
जो पुत्रमाने सावधान
शुण हे आमार वचन।
जे प्राणी जे कार्यमान
निरते करे आचरण

से प्राणी व्यर्थ ए संसारे
पड़े नरक महाघोरे।

केवल जगन्नाथ दास की भागवत ही नहीं चैतन्य दास विरचित विष्णु गर्भ पुराण में भी ऋषभ देव और भरत का चरित्र है। यह पुस्तक अलेख धर्म का एक प्रमुख ग्रन्थ है। वहाँ कहा गया है ऋषभ देव के भरतादि दस पुत्रों ने उनसे अलेख धर्म की दीक्षा ली। इस ग्रंथ में ऋषभ देव का महत्व ही अधिक प्रतिपादित है। भागवत में जिस प्रकार ऋषभ देव की उपदेश वाणी से जैन तत्व प्रस्फुटित होता है, विष्णुगर्भ पुराण में भी उसी प्रकार ऋषभदेव की हितवाणी से जैन तत्व प्रस्फुटित होता है। उड़ीसा का अलेख धर्म जैन धर्म की परिणति रूप में ही अभिव्यक्त है।

उड़ीसा में बउला गाय का उपाख्यान बहुत प्रचलित और लोकप्रिय है। उस उपाख्यान में कहा गया है बउला नामक एक गाय अपने बछड़े को छोड़कर वन में घास की खोज में गयी। वहाँ उसे एक भूखे बाघ ने पकड़ लिया। बउला ने बाघ से कहा तुम मुझे एक बार छोड़ दो। मैं अपने बछड़े को दूध पिलाकर आऊँगी तब तुम मुझे खाना। बाघ बोला तुम यदि नहीं लौटी तो? उसने उत्तर दिया मैं सत्य का पालन करती हूँ। अतः तुम मेरे वचन पर विश्वास कर सकते हो। तब बाघ ने उसे छोड़ दिया। बउला भी अपने बछड़े को दूध पिलाकर तुरन्त लौट आयी। बाघ उसकी सत्यता पर मुग्ध हो गया और अहिंसक बनकर उसे उसके बछड़े के पास जाने दिया। जैन धर्म का अहिंसा तत्व यहाँ बड़ी सुन्दरता से उभरा है—

महायोग वृक्षरे अहिंसा तहिं शाखा
विवेक कुसुम मुक्तिफल देइ देखा।
त्रिविध ताप रे जे तापित सर्व प्राणी
यज्ञ तरुबरकु अहिंसा कला जाणी॥

उड़ीसा में जो कहानी लोक कथा, रूप कथा या जातीय कहानी रूप में प्रचलित है वह चित्रसेन और पद्मावती की आख्यायिका है। चित्रसेन और पद्मावती पूर्व जन्म में हंस और हंसी थे। वे चम्पक वन के एक सरोवर के तट पर रहते थे। एक दिन वहाँ एक सौदागर आया और सरोवर तट पर विश्राम करने लगा। आहार के पूर्व वह किसी अतिथि की प्रतीक्षा करता है। उसी समय एक मास के उपवासी श्रमण वहाँ आए। सौदागर उन्हें आहार देकर कृतकृत्य हो गया। हंस और हंसी सौदागर को मुनि को आहार देते

देखकर खुश हुए और उस दान की प्रशंसा की। इसी अतिथि दान की प्रशंसा के कारण बाद के जीवन में वे राजपुत्र और राजकन्या के रूप में जन्मे। चित्रसेन और पद्मावती की विचित्र कहानी को विवृत करने का यहाँ स्थान नहीं हैं। फिर भी कलिंग की इस लोक कथा के राजारानी दमसार मुनि से दीक्षा ग्रहण करते है और अन्त में मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

वर्तमान में उड़ीसा के लोक व्यवहार में जैन धर्म का कितना प्रभाव है यह कल्पवृक्ष की पूजा से ज्ञात होता है। प्राचीन जैन साहित्य में मिलता है कि मानव सभ्यता के आदियुग में जब कि कृषि आदि लोक व्यवहार को मनुष्य नहीं जानता था, उस समय उसकी सारी आवश्यकताएँ कल्पवृक्ष से ही पूरी होती थीं। कालान्तर में जब कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे तब वह अपनी क्षुधा निवारण कैसे करे यह चिन्ता का विषय बन गया था। तभी ऋषभ देव का आविर्भाव हुआ। उन्होंने कृषि, पशुपालन, व्यवसाय आदि की शिक्षा दी। इस दृष्टि से कल्पवृक्ष की पूजा जैनों का एक वृहद् अनुष्ठान है। इसी के अनुकरण पर हिन्दू धर्म में कामधेनु की कल्पना की गई है। इसी कामधेनु या सुरभि गाय के लिए ही विश्वमित्र ने वशिष्ठ के आश्रम पर आक्रमण किया। अन्त में वे तापस बन गए। जैनों के इसी अनुष्ठान ने हिन्दुओं को प्रयाग स्थित कल्पवृक्ष की प्रेरणा दी है। इतना ही नहीं इसी कल्पवृक्ष से कूद कर प्राण त्यागने की जो प्रथा प्रचलित हुयी वह भी लगता है जैनों की संलेखना द्वारा अनुप्राणित है।

प्रयाग के कल्पवृक्ष की कहानी से लगता है जैन धर्म की विचार धारा ने हिन्दू धर्म को गंभीरता से प्रभावित किया है। इस कल्पवृक्ष से मानता कर के आज भी लोग कृत कृत्य होते हैं। कल्पवृक्ष को लेकर हिन्दू पुराण में बहुत सी कहानियाँ रची गयीं। उड़ीसा में भी कल्पवृक्ष का महत्व कम नहीं है।

यहाँ के लोग वटवृक्ष की पूजा करते हैं। वटवृक्ष से जो जटाएँ निकलती हैं उसे शिव जटा कहते हैं। शिव पुराण में कहा गया है ऋषभ शिव के अवतार हैं। जैनों के कल्पवृक्ष से प्रभावित होकर पुरी-भुवनेश्वर आदि स्थानों के मन्दिर में कल्पवृक्ष की स्थापना कर उसकी पूजा करते हैं।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव हिन्दू पुराण में विष्णु व शिव के अवतार हैं। वे अपने अन्तिम समय में मुखपर पत्थर रखकर कैलाश शिखर पर रहते थे। उसी समय बाँस-वन में आग लगी और वे उसी आग में दग्ध हो गए। यह घटना फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन घटी थी। जैन भी उस दिन को

ऋषभदेव का निर्वाण दिवस मानते हैं। और इसको कल्याणक रूप में पालते हैं। कालक्रम से हिन्दुओं ने भी इस निर्वाण कल्याणक को व्रत विशेष रूप में स्वीकार किया जो कि आज शिव चतुर्दशी या जागर चतुर्दशी के रूप में भारत प्रसिद्ध है। इसका आधुनिक रूप जो भी हो यह एक जैन पर्व है और उसी रूप में ओतप्रोत होकर हिन्दुओं के व्यवहार में घुसमिल गया है।

उड़ीसा के प्रत्येक गाँव व शहर में शिव मन्दिर है। इन समस्त मन्दिरों में ब्राह्मणेतर जाति के लोग पूजा करते हैं। शिव चतुर्दशी उड़ीसा की ग्रामीण जनता का भी एक प्रमुख पर्व है। सुदूर अतीत की जैन धर्म की इस परम्परा को उड़ीसा के लोगों ने भी अपनी संस्कृति में परिणत कर लिया है।

पहले जो वटवृक्ष की कथा कही गयी है उसकी पूजा उड़ीसा में आज भी प्रचलित है। उड़ीया भाषा में रचित विचित्र रामायण एक ग्रामीण काव्य है। उस काव्य में प्रयोजन नहीं होने पर भी कवि ने वट प्रार्थना नाम देकर एक प्रार्थना सीता के मुख से कहलायी है—

बाँछ वट धेन धेन मो मिनति वट श्रेष्ठ—
विकल होइण वट मूले शिरे कर जोड़ि सीता बोले।
चतुर्दश लोके ख्यात होइ अछ घर उपकारे ए संसारे॥
शाश शशुर मो निश्चिन्तरे सर्वे शुभे थान्तु अयोध्या रे।
आदि आदि
यह प्रार्थना जैनों की सर्वे भवन्तु सुखिनः के अनुरूप है।

उड़ीसा और अन्यत्र शिव मन्दिर में त्रिशूल देखा जाता है। वह त्रिशूल जैनों के त्रिरत्न चिह्न के जैसा है। (कंकाली टीला, मथुरा के आयाग पट्ट में अंकित त्रिरत्न चिह्न देखें।) त्रिशूल और वृष जैसे शिव का है वैसे ही ऋषभदेव का है। ऋषभ भी वृषभ का पर्यायवाची है।

पुरी के जगन्नाथ मन्दिर के बेढे में कोइली बैकुण्ठ है। यह कोइली शब्द तमिल कोएल (देवस्थान) से आया है या जैन कैवल्य से ?—यह सोचने का है। डा० लक्ष्मी नारायण साहु कहते हैं कि यह जैन कैवल्य से आया है। कारण प्राचीन हिन्दुग्रन्थों में कैवल्य शब्द मोक्ष के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है।

तीर्थंकरों का गर्भाधान, जन्म, दीक्षा, बोधि और मोक्ष जिस जिस तिथि को होता है उस दिन इन्द्रादि देव स्वर्ग में उत्सव करते हैं। इसी लिए उस दिन उनके अनुयायी मृत्युलोक में भी चैत्य यात्रा करते हैं। चैत्य यात्रा अर्थात् रथ यात्रा। चैत्यरथ में जिन प्रतिमा को बैठाकर नगर परिक्रमा कराना

ही इस उत्सव की विधि है। यह रथ यात्रा सुसज्जित हाथी, घोड़ा, नृत्य-गीत वाद्यादि के साथ निकलती है। जैन साहित्य में इस यात्रा का विशेष विवरण मिलता है। चित्रसेन व पद्मावती की कहानी में भी रथयात्रा का विवरण है।

उड़ीसा के पुरी और भुवनेश्वर में आषाढ़ शुक्ला दूज और चैत्र शुक्ला अष्टमी को रथ यात्रा निकलती है। ये दोनों तिथियाँ विशेष तथा सर्वश्रेष्ठ तिथि रूप में स्वीकृत है। यहाँ तक कि उस दिन नक्षत्रों का विचार किए बिना ही पुण्य कार्य किया जा सकता है। इसलिए इसे कल्याणक दिवस कहा जाता है। स्मृति शास्त्र में केवल पुष्या नक्षत्र युक्त द्वितीया तिथि को राम और भद्रा सहित जगन्नाथ को रथ में बैठाकर यात्रोत्सव करने का विधान है। किन्तु वार नक्षत्रादि का विचार किए बिना शुभ कार्य का विधान नहीं है। इसलिए स्मृतिशास्त्र इसे कल्याणक दिवस के रूप में ग्रहण नहीं करता। जो स्मृतिशास्त्र में विहित नहीं फिर भी देश में प्रचलित है वह निश्चित समाज और लोक व्यवहार सम्मत है। अतः थोड़ी खोज करने से ही इन दोनों का मूल जैन है यह प्रमाण मिल जाएगा। चैत्र शुक्ला अष्टमी ऋषभदेव का जन्म कल्याणक दिवस है। इसीलिए भुवनेश्वर में उस दिन रथ यात्रा निकलती है। जगन्नाथ ऋषभ के प्रतीक हैं ऐसा बहुत से लोगों का मानना है। इसीलिए उस दिन जगन्नाथ का रथ यात्रा उत्सव होता है। संस्कृत साहित्य में अशोकाष्टमी को रथयात्रा निकालने का कोई उल्लेख नहीं है, केवल शोक रहित होने के उद्देश्य से पुनर्वसु नक्षत्र में जल के साथ ८ अशोक कलि पीने का विधान है। एतदर्थ जैन सम्मत रथ यात्रा के साथ ही इसकी संगति है।

जगन्नाथ की स्नान यात्रा भी जैन स्नात्र पूजा की तरह ही है। छत्र चामर वाद्य यंत्र के साथ आठ कलश द्वारा जिन प्रतिमा का अभिषेक किया जाता है। विशेषतः प्रतिमा के नेत्रों को तलिका से फिर से रंग करने की जो विधि जैन शास्त्र में पायी जाती है उसी के अनुकरण पर जगन्नाथादि मूर्ति त्रय की स्नान यात्रा के पश्चात् पीला (हल्दी जैसा) रंग लगाकर नवयौवन आदि किया जाता है। नेत्रों का नवीनीकरण लक्ष्य करने लायक है। जगन्नाथ के गोलाकार नेत्रों के अतिरिक्त और कुछ रंगा नहीं जाता है। जगन्नाथ मूर्ति चक्षुप्रधान है। जगन्नाथ शब्द भी मूलतः जैन शब्द है। जिनेश्वर अर्थात् आदिनाथ ऋषभ का द्वितीय नाम है ऐसा अभिधान राजेन्द्र में उल्लिखित है। अतः ऋषभदेव के रथोत्सव का रूपान्तर यह जगन्नाथ यात्रा

है। जगन्नाथ की रथ यात्र श्री कृष्ण की घोष यात्रा नहीं है कारण घोष यात्रा में प्रत्यावर्तन नहीं होता। किन्तु इसका प्रत्यावर्तन होता है।

ऋषभदेव के साथ कल्पवृक्ष की स्मृति जुड़ी हुई है। जगन्नाथ धाम का कल्पवृक्ष जगन्नाथ ही ऋषभ हैं इस धारणा को पुष्ट करता है। ऋषभ ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। ऋषभ का धर्मचक्र ही जगन्नाथ का नीलचक्र है। ऋषभ की पूजा भारत के जिस-जिस क्षेत्र में होती है उसे चक्र क्षेत्र कहा जाता है। आबू पर्वत का क्षेत्र चक्र क्षेत्र है। उड़ीसा के केन्दुझर जिले के आनन्दपुर सब डिवीजन में पहले जहाँ ऋषभ पूजे जाते थे उसे भी चक्र क्षेत्र कहा जाता है। इसी प्रकार पुरी को जो चक्र क्षेत्र कहा जाता है आज उसे वैष्णव रूप देन पर भी मूलतः ऋषभ पूजा का केन्द्र रूप ही है। इसलिए कहा जाता है कि जगन्नाथ अनुष्ठानिक रूप में जैन हैं। जगन्नाथ की जो आकृति है वह जैन प्रतीक बद्धमंगल और नमीपद का संयुक्त रूप है—यह लक्ष्य करने योग्य है।

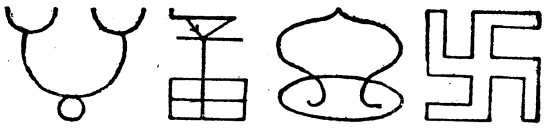

नमीपद वृक्षचैत्य बद्धमंगल स्वस्तिक

असम में जैन धर्म

ईसा की सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग (चीनी यात्री) भारत भ्रमण के लिए आए थे। इसी सिलसिले में पुण्ड्रवर्द्धन की यात्रा कर एक वृहद् नदी (करतोया) अतिक्रम कर कामरुप राज्य (वर्तमान गोहाटी अंचल) में गए थे। वहाँ की स्थिति का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—"कामरुप में सभी देवोपासक हैं। वहाँ एक भी संघाराम नहीं है। जो बौद्ध वहाँ रहते हैं वे अपनी धर्मोपासना छिप कर करते हैं।" जैन धर्म के विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा।

कामरुप से दक्षिणकी ओर यात्रा कर वे समतट पहुँचे। समतट यानि श्रीहट्ट व त्रिपुरा अंचल। वहाँ की स्थिति के विषय में लिखते हैं—"यहाँ ३० बौद्ध

संघाराम हैं, जिनमें दो हजार से अधिक भिक्षु निवास करते हैं। परन्तु संख्या निर्ग्रन्थों की ही अधिक हैं।"

पुण्ड्रवर्द्धन और समतट में जब जैनों की संख्या अधिक थी तब कामरुप में एक भी जैन नहीं था ऐसा हो नहीं सकता। शायद उनकी संख्या अल्प होगी। इसलिए ह्वेनसांग ने उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा।

इतने दिनों तक हम भी इस विषय में कुछ नहीं कह सकते थे किन्तु अब ग्वालपाड़े से १४ कीलोमीटर पूर्व में अवस्थित सूर्य पहाड़ पर जैन पुरातत्व सामग्री प्राप्त हुयी है। अतः हम अब दृढ़ता के साथ यह कह सकते हैं कि सुदूर अतीत काल में असम में भी जैन धर्म का अनुप्रवेश हुआ था।

सूर्य पहाड़ पर छोटी-बड़ी सात टूकें हैं। अतः स्थानीय अधिवासी इसे संताली पर्वत कहते हैं, इस संताली या सूर्य पहाड़ पर एक गुफा में दो तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्णित हैं एक है भगवान पद्मप्रभ की दूसरी भगवान ऋषभदेव या भगवान् शान्तिनाथ की। इसके बगल की दूसरी गुफा में अन्य देव-देवियों के साथ बारह भुजावाली एक देवी प्रतिमा है, यह प्रतिमा सम्भवतः भगवान ऋषभदेव की शासन देवी चक्रेश्वरी देवी की है। अनुसन्धान या उत्खनन करने पर शायद यहाँ और भी जैन पुरातत्व की सामग्री प्राप्त हो सकती है।

इस पहाड़ के २ किलोमीटर आगे मरन और कोदालधोवा नामक दो गाँव हैं जहाँ छोटे-बड़े बहुत से पोखर देखे जाते हैं। मरन गाँव की २ किलोमीटर परिधि के भीतर पुरातत्व की बहुत सी सामग्री बिखरी पड़ी है। 'पवित्र असम' ग्रन्थ से जाना जाता है कि किसी समय यहाँ विजली राजाओं की राजधानी थी। बिजली राजाओं के साथ सूर्य पहाड़ स्थित जैन पुरातत्व का कोई सम्बन्ध है या नहीं यह तो हम नहीं जानते परन्तु राजधानी के अत्यन्त निकट होने के कारण उसकी देख-भाल वे करते थे ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई पुरातत्व वस्तु या साहित्य आज भी अनुपलब्ध है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

एक बार बसन्तदेव वाणिज्य के लिए काम्पिल्य से जयन्ती नगरी गया और वहाँ पण्य क्रय-विक्रय कर अर्थोपार्जन करने लगा। वहाँ रहते हुए वह एक दिन अष्टमी तिथि के चन्द्रोत्सव में रतिनन्दन उद्यान में गया। वहाँ उसने केशरा को देखा। केशरा ने भी उसे प्रीतिपूर्ण नयनों से देखा। पूर्व जन्म के प्रेम के फल स्वरूप वे परस्पर आकृष्ट हो गए। बसन्तदेव ने जयंती नगरी के एक वणिक पुत्र प्रियंकर से पूछा, भद्र, वह कौन है? किसकी लड़की है? प्रत्युत्तर में प्रियंकर ने कहा, वह श्रेष्ठी पंचनन्दी की कन्या और जयंतीदेव की बहन है। उसका नाम केशरा है। वह अभी अविवाहित है।

वसन्तदेव ने जयंतीदेव के साथ व्यवसायिक सम्बन्ध स्थापित किया। फलतः दोनों में बन्धुत्व स्थापित हुआ। और वे एक-दूसरे के घर आने-जाने लगे। एक दिन जयंतीदेव ने वसन्त देव को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। बन्धुत्व का दोहद ऐसा ही होता है। वहाँ वसन्तदेव ने नेत्रों के लिए चन्द्रिका सी केशरा को पुष्पों से कुसुमायुध की पूजा करते देखा। जयंतीदेव ने अपने हाथों से बसन्तदेव को पुष्प माला दी। यह देखकर केशरा पुलकित हो गयी और इसे एक शुभ-शकुन माना। इससे दोनों हर्षित हुए। उन दोनों का प्रीतिपूर्ण व्यवहार वहाँ उपस्थित धात्री-पुत्री प्रियंकरा को दृष्टिगत हुआ। वह उनके मनोभावों को समझ गयी। कारण जो बाह्य क्रिया और मुख के भावों से मनोभाव जान सकता है उसके लिए हृदय को समझना कुछ कठिन नहीं है।

केशरा के भाई ने वसन्त-सखा वसन्त की भाँति वसन्तदेव का सत्कार किया। यह देखकर प्रियंकरा केशरा से बोली, तुम्हारे भाई ने उनका सत्कार किया अब तुम भी उनका यथोचित सत्कार करो। केशरा युगपत् लज्जा भय और आनन्द से विह्वल होकर बोली, सखि, वह तो तुम्हीं करो। तब प्रियंकरा ने प्रियंगु, कल्लोल आदि पुष्पों का गुच्छा वसन्तदेव के हाथों में देती हुयी बोली, मेरी सखी के हाथों से बनाया यह प्रेम पुष्प स्वीकार करिए। वसन्तदेव ने भी वह मुझे चाहती है सोचकर आनन्द पूर्वक वह पुष्प-गुच्छ

स्वीकार कर लिया। फिर स्व-नामांकित अंगूठी उसे देकर बोले, यह आपकी सखी को दे दीजिएगा। वे मेरे इस सामान्य उपहार को अवश्य ग्रहण करें। उन्होंने मेरे प्रति जो स्नेह प्रकट किया है वह स्नेह उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे।

प्रियंकरा ने केशरा को अंगूठी देकर वसन्तदेव ने जो कुछ कहा था उसे दोहरा दिया। जल सिंचन से बीज से अंकुरित होकर वृक्ष जैसे बढ़ता है उसी प्रकार वह बात सुनकर केशरा का प्रेम बढ़ने लगा। रात्रि के शेष याम में केशरा ने स्वप्न में देखा मानों वसन्तदेव के साथ उसका विवाह हो रहा है। उसी समय वसन्तदेव ने भी ऐसा ही स्वप्न देखा। अनुरूप स्वप्न दर्शन विवाह से भी अधिक प्रीतिवर्द्धक होता है। आनन्द से पुलकित होकर केशरा ने वह स्वप्न प्रियंकरा को बताया। ठीक उसी समय कुल पुरोहित अन्य प्रसंग में सहसा बोल उठे, ऐसा ही होगा। यह सुनकर प्रियंकरा बोली, स्वप्न दर्शन और इस शकुन से प्रतीत होता है वसन्तदेव ही तुम्हारा पति होगा। आओ शकुन को दृढ़ करें—ऐसा कहकर वह वसन्तदेव के पास गयी और केशरा के स्वप्न की बात कही। अपने स्वप्न से केशरा के स्वप्न का सादृश्य देखकर वसन्तदेव ने सोचा मानो उनका विवाह पक्का हो गया है। प्रियंकरा बोली, आर्य, केशरा आपकी ही है। अब निःसंकोच उसके साथ विवाह का आयोजन करिए।

वसन्तदेव बोले परम्परानुसार वह अवश्य ही होगा कहकर सत्कार सहित उसे विदा किया।

इस प्रकार परस्पर वार्ता विनिमय में कुछ काल व्यतीत हुआ। एक दिन वसन्तदेव जब निज घर में विश्राम कर रहे थे तभी पंचनन्दी के घर से मंगलवाद्य की आवाज सुनायी दी। भृत्य को पूछने पर उसने कहा पंचनन्दी ने कान्यकुब्ज निवासी श्रेष्ठी सुदत्त के पुत्र वरदत्त के साथ केशरा का सम्बन्ध किया है यह उसी का मंगलवाद्य है।

यह सुनकर मानो किसी ने उसके सिर पर हथौड़ा मार दिया हो इस प्रकार मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ा। ठीक उसी समय प्रियंकरा वहाँ आयी और उसे स्वस्थ कर बोली, आप चिन्ता न करें। मेरी प्रियसखी ने कहला भेजा है—गुरुजनों के मनोभाव को जानकर मैं आपके साथ ही विवाह करूँगी। उन्होंने मेरी इच्छा जाने बगैर ही यह सम्बन्ध पक्का कर लिया है। वे चाहे जो स्थिर करें मैं ऐसा नहीं करूँगी। मैं या तो आपकी होऊँगी या

मृत्यु को वरण करूँगी। आप मेरी इस बात को सत्य समझिएगा। कारण उच्च कुल जात कभी झूठ नहीं बोलते।

यह सुनकर वसन्तदेव आनन्दित हुए और बोले—मेरा स्वप्न भी तो यही कहता है। उच्चकुलजात कभी मिथ्या नहीं बोलते यह मैं जानता हूँ। मैं भी केशरा के लिए ही जीऊँगा। अगर वह नहीं मिली तो प्राण त्याग दूँगा।

प्रियंकरा ने यह बात जाकर केशरा से कही। यह सुनकर केशरा भी आनन्दित हुयी। फिर वे लोग किस प्रकार मिलेंगे यह परिकल्पना करते हुए चक्रवाक की दुःखद रात्रि-से कुछ दिन बीत गये। इसी मध्य उनका मनोरथ पूर्ण होने के पूर्व ही लग्न के पहले दिन बारात आ पहुँची।

यह सुनकर वसन्तदेव नगर परित्याग कर एक उद्यान में गए। उन्होंने सोचा केशरा का यदि दूसरे के साथ विवाह हुआ तो वह वहीं कुम्हड़े की भाँति सूखकर मर जाएगी। अथवा यथार्थ बात जाने बिना उसके गुरुजनों ने जो विवाह स्थिर किया है उसके भार से व मुझे नहीं पाने के दुःख से वह विवाह के पूर्व ही आत्महत्या कर सकती है। अतः क्यों नहीं मैं उसकी मृत्यु के पूर्व ही मृत्यु-वरण कर दुःख को हल्का करूँ। घाव पर नमक की तरह प्रियतमा की मृत्यु का संवाद कौन सुनना चाहेगा?

ऐसा सोचकर अशोक वृक्ष की ऊपरी शाखा पर धनुष की प्रत्यंचा की तरह उसने रस्सी बाँध दी और गले में फाँसी डाल ली। ठीक उसी समय समीप की झाड़ी से एक व्यक्ति बाहर आया और ऐसा मत करो, ऐसा मत करो कहता हुआ वृक्ष पर चढ़ा एवं रस्सी काट कर उसके गले का फन्दा खोल डाला और बोला, तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? वसन्तदेव ने कहा, मुझ भाग्यपीड़ित से इन्द्र-वारूणी की तरह तुम मुझे देखकर क्यों दुःखी हो रहे हो? मैं मृत्यु वरण कर अपनी प्रियतमा के विच्छेद दुःख को भूलने जा रहा था। तुमने मुझे क्यों बाधा दी?

वसन्तदेव ने उसके पूछने पर सारी कथा कह सुनायी। दूसरे को कहने से दुःख कुछ कम हो जाता है। यह सुनकर वह बोला, यदि ऐसा ही है तो विवेकवान् को आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। बल्कि अभिप्सित वस्तु को कैसे प्राप्त किया जाए उसका उपाय सोचना चाहिए। तुम्हारे इस कार्य में अवसर भी है। अतः पशु की भाँति प्राण मत दो। जहाँ अवसर नहीं होता वहाँ भी आत्महत्या उचित नहीं है। मृत व्यक्ति को उसकी अभिप्सित

वस्तु नहीं मिलती वह तो कर्मानुसार भिन्न गति में चला जाता है। मुझे देखो ना—इच्छित वस्तु नहीं मिलने के कारण मैं भटक रहा हूँ। सोचता हूँ जीवित रहें तो शायद किसी दिन वह मिल भी सके। मेरी कथा सुनो—

मैं कृत्तिकापुर का अधिवासी हूँ, नाम कामपाल। यौवन में देश पर्यटन की इच्छा से घर से बाहर निकला। घूमते-घूमते शंखपुर नगर में पहुँचा। वहाँ शंखपाल यक्ष का उत्सव हो रहा था। अतः उसे देखने गया। वहाँ एक आम्र निकुंज में एक सुन्दरी को देखा। वह मुझे कामदेव की किसी अन्तःपुरिका-सी लगी। मैं काम से आबद्ध-सा उसी प्रकार खड़ा उसे देखता रहा। उसने भी मेरी ओर प्रेममय दृष्टि से देखा। अपनी एक सखी से मुझे पान भेजा जो कि प्रेम और आरक्त अधरों के निदर्शन और कारण है। मैंने उसका पान ग्रहण किया और विनिमयमें कुछ देने की सोच ही रहा था। उसी समय एक उन्मत्त हाथी जिस खूंटे से बाँधा हुआ था उस खूंटे को उखाड़कर पैरों की शृंखला तोड़कर उस लड़की की ओर दौड़ा। इस आकस्मिक घटना से महावत किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना-सा हाथ में अंकुश लिए खड़ा ही रह गया, कुछ कर नहीं पाया। हाथी को आते देखकर उस लड़की के अनुचर डर कर इधर-उधर भाग गए। कारण भय के समय सबको अपना जीवन ही प्रिय होता है। सिंह के सम्मुख हरिणी की तरह वह भय से थरथर काँपने लगी। हाथी जैसे ही सूंड़ से उसे उठाने गया तभी मैंने लाठी से उसकी पूँछ पर प्रहार किया। सांप की पूँछ पर पैर पड़ जाने से जैसे वह लौटकर देखता है उसी प्रकार हाथी उसे छोड़कर मेरी ओर घूमा। उसी समय मैंने हाथी को धोखा देकर सुन्दरी को उठाया और निर्विघ्न स्थान में चला गया। वहाँ मैंने उसे कंधों से नीचे उतारा किन्तु उसने मुझे अपने हृदय से नहीं उतारी। उसके अनुचर लौटे और मदिरा की मैंने प्राण रक्षा की इसके लिये मेरा गुणगान करने लगे।

वे पुनः मदिरा को आम्रकुंज में ले गये किन्तु पुनः हाथी का उपद्रव होने पर जिसे जिधर राह मिली वह उधर ही दौड़ गया। उसी भाग दौड़ में मदिरा कहां गयी कुछ जान नहीं पाया। तदुपरांत उसे इधर-उधर बहुत जगह खोजा। बहुत खोजने पर भी वह नहीं मिली। तब हताश होकर घूमता हुआ यहाँ आया। यद्यपि उसे पुनः पाने की सम्भावना नहीं है, फिर भी मैं मरा नहीं, जीवित हूँ किन्तु तुम्हारे पास तो केशरा तक पहुँचने का उपाय है। हमलोगों का दुःख एक-सा ही है अतः एक मित्र की भाँति तुम्हें कह रहा हूँ—मृत्यु को क्यों वरण कर रहे हो? तुमने कहा—कल उसका विवाह है।

परम्परानुसार आज वह कामदेव और रति की पूजा करने अकेली मन्दिर के भीतर जाएगी। अतः चलो हम चुपचाप मन्दिर में कहीं जा छुपें। उसके मन्दिर में प्रवेश करने पर उसी के वस्त्र पहन कर उसके अनुचरों के साथ मैं केशरा के रूप में उसके घर चला जाऊँगा। मेरे चले जाने के पश्चात् तुम उसे लेकर जहाँ इच्छा हो चले जाना।

उसकी बात से आनन्दित होकर वसन्तदेव बोला, तुम्हारी योजना बहुत सुन्दर है। उसमें तो मेरा प्राप्तियोग और आनन्द है। किन्तु तुम पर तो एक साथ आफत आ पड़ेगी। ठीक उसी समय कुल देवी की तरह एक वृद्धा ब्राह्मणी छींकी। उस छींक को सुनकर कामपाल बोला, मित्र, उससे मुझपर आफत नहीं आएगी वर्ना तुम्हारा कार्य कर देने के कारण मेरा भी भला ही होगा। ठीक उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण अन्य प्रसंग पर बोला, बात सही है। इस परिकल्पना से सहमत होकर वसन्तदेव ने कामपाल सहित नगर में प्रवेश किया और दोनों आहारादि के पश्चात् सन्ध्या के बाद कामदेव और रति के मन्दिर में जाकर मूर्त्तियों के पीछे छीपकर बैठ गये। कुछ देर में ही उन्हें मंगल वाद्य सुनाई पड़े। केशरा आ रही है जानकर वे आनन्दित हुए। केशरा यही मंत्र उच्चारण करती हुयी आयी 'मेरा मेरे प्रेमी से मिलन हो'। मंत्र उच्चारण से ही सिद्ध होता है। स्वर्ग की देवी जैसे विमान से उतरती है वैसे ही केशरा पालकी से उतरी और प्रियंकरा के हाथ से पूजा का स्वर्णथाल लेकर अकेली ही मन्दिर में प्रविष्ट हुयी। फिर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। क्योंकि ऐसी ही परम्परा है।

पत्र-पुष्प और मुद्राएँ रति और कामदेव की मूर्ति के सम्मुख रखकर वह करबद्ध होकर वाष्परुद्ध कण्ठ से बोली, देव, आप सभी के हृदय में सब समय विराजमान रहते हैं। अतः सबका मनोभाव भी जानते हैं। इतना होने पर भी मैं जिससे प्रेम नहीं करती उससे मुझे मिला रहे हैं। क्या यह उचित है? मैं वसन्तदेव के अतिरिक्त किसी को नहीं चाहती। विषकन्या जिस प्रकार पति की मृत्यु का कारण बनती है उसी प्रकार दूसरा पति मेरी मृत्यु का कारण होगा। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए ताकि वसन्तदेव परजन्म में मेरा-पति बने। बहुत दिनों से आपकी उपासना कर रही हूँ। यह अन्तिम उपासना है।

ऐसा कहकर वह गले में फांसी लगाकर तोरण की कील से लटकने ही जा रही थी कि वसन्तदेव व कामपाल मूर्त्तियों के पीछे से बाहर आ गए। वसन्तदेव ने उसके गले की फाँसी खोल दी। वह भय, विस्मय, लज्जा से

बोल उठी, तुम कौन हो ? यहाँ कैसे आए ? वसन्तदेव बोला, प्रिये, मैं तुम्हारा पति वसन्तदेव हूँ जिसे तुम परजन्म में पाने की कामना कर रही थी। इन महात्मा की योजना के अनुसार मैं तुम्हें यहाँ लेने आया हूँ। तुम्हारे ये वस्त्र खोलकर तुम उन्हें दे दो ताकि उन्हें पहन कर वे तुम्हारे अनुचरों को धोखा देकर तुम्हारे घर जा सकें। जब वे चले जायेंगे तब हम अन्यत्र चले जायेंगे।

यह सुनकर केशरा ने मूर्त्ति के पीछे जाकर अपने वस्त्र खोलकर कामपाल को दे दिए और स्वयं पुरुष भेष धारण कर लिया। कामपाल ने भी कामदेव की उपासना कर केशरा के वस्त्र पहन लिए और मुखपर अवगुण्ठन डालकर दरवाजा खोल दिया। फिर प्रियंकरा के हाथ पर हाथ रखकर पालकी पर चढ़ गया। पालकी-वाहक पालकी ले चले। इस भाँति अनुचरों के अनजान में कामपाल पंचनन्दी के घर पहुँच गया। स्वयं ब्रह्मा भी सुपरिकल्पित योजना का भेद नहीं जान पाते। प्रियंकरा ने उसे पालकी से नीचे उतारा और वधू गृह में ले जाकर स्वर्ण मंडित वेंत के आसन पर बैठाया। केशरा तू वहीं मंत्र जाप करती रह कहकर वह दूसरी ओर चली गयी। कामपाल बुद्धिमान तो था ही अतः उसके कथन का तात्पर्य समझ गया और मन्मथ एवं रति के मिलन का मंत्र जाप करता रहा।

शंखपुर निवासी केशरा के मामा की लड़की मदिरा विवाह में आमंत्रित होकर वहाँ आयी थी। वह केशरा वेशी कामपाल को जाकर बोली, केशरा, जो भाग्याधीन है उसके लिए कष्ट क्यों पा रही है ? मैंने शंखपुर में ही वसंतदेव के साथ तेरे प्रणय की कथा सुनी थी। मैं अपने अनुभव से ही विच्छेद की वेदना जानती हूँ। दुर्भाग्य जो इच्छित नहीं है ऐसा ही करता है। उसी प्रकार सौभाग्य जो इच्छित है उसे भी जुटा देता है। बहन, तू तो फिर भी सौभाग्यशाली है कारण जिससे प्रेम किया उसे बहुत बार देखा है, उससे बातचीत की है। किन्तु मेरे दुर्भाग्य की बात मैं क्या कहूँ ? फिर भी सुन— मैं अनुचरों को लेकर शंखपाल के उद्यान में गयी थी। वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे मनोहरण एक नवयुवक को देखा। एक सखी के द्वारा मैंने उसे पान भेजा। ठीक उसी समय यम की तरह एक उन्मत हाथी मेरी ओर दौड़ा तभी उसने हाथी से मेरी रक्षा की। उसी हाथी का पुनः उपद्रव होने पर मैं और मेरे अनुचर हाथी के भय से इधर-उधर दौड़ने लगे। उस समय जो उन्हें खोया सो आज तक खोज नहीं पायी। उसी समय से मृतक की भाँति जी रही हूँ। तब से स्वप्न के अतिरिक्त उन्हें कहीं नहीं देखा। अब तो सौभाग्य

ही उन्हें मेरे पास ला सकता हैं। अन्यथा मत समझना। तुम्हारे दुःख को लाघव करने के लिए ही मैंने तुम्हें यह बात कही है। अब दुःख की बात छोड़ो। यदि भाग्य सुप्रसन्न हुआ तो उसके साथ फिर मिलन हो सकता है।

उसकी बात सुनकर कामपाल अवगुण्ठन हटाकर मदिरा से बोला, प्रिये, वह नवयुवक मैं ही हूँ जिसे तुमने यक्षोत्सव में देखा था। भाग्य की कृपा से हमलोगों की तरह वसन्तदेव और केशरा का मिलन हो गया है। अब बातों में समय नष्ट मत करो। भय त्याग कर भागने का पथ सोचो ताकि हम यहाँ से भाग सकें।

ऐसा कहकर वह उठ खड़ा हुआ और मदिरा द्वारा निर्देशित पिछले दरवाजे से उद्यान में गया और वहाँ से मदिरा को लेकर वसन्तदेव एवं केशरा से मिलकर इस नगर में आया। राजन्, पूर्व जन्म के स्नेह के कारण वे दोनों तुम्हें दिव्य पंच द्रव्य देते रहते हैं। उन्हे पहचानों। उनके साथ इन पंच द्रव्यों का उपभोग कर सकोगे। इतने दिनों तक तुम उन्हें पहचानते नहीं थे इसीलिए तुम उन वस्तुओं का उपभोग नहीं कर सके।

भगवान शान्तिनाथ की यह बात सुनकर राजा और उनके मित्रों को पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ। राजा कुरुचन्द्र भगवान को प्रणाम कर अपने पूर्व जन्म के मित्रों को भाइयों की तरह अपने प्रासाद में ले गए। देव भी भगवान शान्तिनाथ को प्रणाम कर अपने-अपने निवास स्थान को लौट गए। भगवान लोक कल्याण के लिए अन्यत्र विहार कर गए।

भगवान के संघ में ६२००० ब्रह्मचारी साधु, ६१६०० साध्वियाँ, ८०० पूर्वधारी, ३००० अवधि ज्ञानी, ४००० मनःपर्याय ज्ञानी, ४३०० केवल-ज्ञानी, ६००० वैक्रियलब्धिधारी, २४०० वादी २९०००० श्रावक और ३९३००० श्राविकाएँ थीं। केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद भगवान एक वर्ष कम २५ हजार वर्ष तक प्रव्रजन करते रहे। अपना निर्वाण समय निकट जानकर वे सम्मेतशिखर पर्वतपर गए और ९००मुनियों सहित अनशन ग्रहण कर लिया। एक महीने बाद ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को चन्द्र जब भरणी नक्षत्र में अवस्थित था तब उन ९०० मुनियों सहित निर्वाण को प्राप्त हो गए। भगवान की पूर्ण आयु एक लाख हज़ार वर्ष की थी। उसमें उन्होंने २५-२५ हजार वर्ष कुमारा-वस्था, मांडलिक राजा, चक्रवर्ती, और व्रत पर्यायों में व्यतीत किए। तीर्थंकर रूप में धर्मनाथ स्वामी के निर्वाण के बाद एक पल्योपम के तीन चतुर्थांश कम तीन सागरोपम के पश्चात् भगवान शान्तिनाथ का जन्म हुआ था।

उनका निर्वाण महोत्सव भी देव और इन्द्रादि द्वारा अनुष्ठित हुआ। यथा समय गणधर चक्रायुध को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुयी। दीर्घकाल तक पृथ्वी पर विचरण करते हुए भव्य जीवों को प्रज्ञा का आलोक देते हुए वे भी बहुत से मुनियों सहित कोटि-शिला तीर्थ पर निर्वाण को प्राप्त हुए।

प्रख्यात प्रतापी और शक्ति के अक्षय अधिकारी भगवान शान्तिनाथ की जय हो। जिन्होंने छः खण्ड पृथ्वी को सहज ही जीत लिया था। बाद में उसी राज्य सम्पदा को तृण की भाँति त्यागकर दीक्षा ग्रहण कर ली। जिनका यश चक्रवर्ती रूप में उससे भी अधिक तीर्थंकर रूप में फैला उनकी जय हो।

पंचम सर्ग समाप्त

पंचम पर्व समाप्त

षष्ठ पर्व

प्रथम सर्ग

अज्ञानान्धकार रूपी प्रस्तर को चूर्ण करने में नदी प्रवाह रूप भगवान कुन्थुनाथ की वाणी जययुक्त हो। भव समुद्र को मन्थन करने वाले मन्थन पर्वत की तरह त्रिलोकनाथ कुन्थु का जीवन चरित्र मैं अब वर्णन कर रहा हूँ।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर आवर्त नामक विजय में खड्गी नामक नगर में समस्त गुणों के आकर न्याय परायणों में अग्रगण्य सिंहवाह नामक एक राजा थे। वे नीति के मानों पर्वत-से, पाप-विनाशन के खड्ग रूप, धर्म के आश्रय स्थल और बुद्धि के निवास रूप थे। उनके मन और बुद्धि के तल को स्पर्श करना जो विचक्षण थे उनके लिए भी सहज नहीं था। उनका वैभव और सैन्यदल शुक्र के समान था। उनका तेज हरि के अनुरूप था। समुद्र-से शक्तिशाली वे अपनी मर्यादा का उल्लंघन कभी नहीं करते थे। साथ ही पृथ्वी को भी उसकी मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं करने देते थे। उनकी प्रत्यंचा का निर्घोष विजय श्री को आकृष्ट करने में, शत्रु सैन्य ध्वंश करने में और पृथ्वी की रक्षा करने में मंत्र रूप थे। वे न्याय के लिए ही पृथ्वी पर शासन करते थे, अर्थ के लिए नहीं। जो धर्मानुरागी होते हैं वे अर्थ को तो उसके परिणाम रूप में ही प्राप्त करते हैं। श्रमण जैसे आसक्ति रहित होकर आहार ग्रहण करते हैं उसी प्रकार तत्व-वेत्ताओं में अग्रणी वे आसक्तिहीन होकर सांसारिक सुखों का भोग करते थे। इसी भाँति कुछ काल व्यतीत हुआ।

एक दिन उन्होंने पूर्ण विरक्त होकर आचार्य संवर से संसार समुद्र के तट-सी दीक्षा ग्रहण कर ली। निष्ठा सहित व्रत पालन कर और बीस स्थानक एवं अर्हतों की आराधना कर उन्होंने तीर्थंकर नामक गोत्र कर्म उपार्जन किया। कालक्रम से सम्यक् दृष्टि वे ध्यान में निविष्ट होकर मृत्यु वरण कर सर्वार्थसिद्धि विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नामक एक नगर था। उस नगर में मन्दिरों पर श्वेत पताकाएँ वायु से आन्दोलित होकर सर्वदा नृत्य करती थीं। देखकर लगता मानो स्वयं धर्म ही आनन्दमना होकर नृत्य कर रहा है। यहाँ के गृह प्रांगण रत्नजड़ित होने से मद्यासक्त हाथी उनमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसे अन्य हाथी समझ स्व-दन्तों से आघात करते। आकाश जैसे ग्रह नक्षत्रों से सुशोभित होता है उसी प्रकार राजा का प्रासाद-तोरण, प्रजाजनों के गृह द्वार और अन्यत्र सर्वत्र अर्हत् प्रतिमाओं से शोभित होते थे।

अलका में जैसे कुबेर है उसी भाँति नवीन सूर्य से प्रभावशाली सूर इस नगरी के राजा थे। उनके हृदय में द्वितीय आत्मा की भाँति धर्म निवास करता था, काम और अर्थ तो शरीर की भाँति बाहर अवस्थित रहते। अतः हाथों के अंगदादि की भाँति अलंकार रूप में ही वे शोभित होते थे। वे बिना किसी पर क्रुद्ध हुए इस पृथ्वी पर शासन करते थे। कठोर नहीं होने पर भी चन्द्र सबको आलोकित करता है।

हरि की श्री की भाँति उनकी पत्नी का नाम श्री था। वह जैसी रूप लावण्य और शील की प्रतिरूप थी वैसी ही अनिन्द्य चारित्र की अधिकारिणी थी। वह जैसी सुन्दर थी वैसा ही उसकी वाणी से अमृत झरता था। उसे देखकर अमृत सरिता या चन्द्रलोक से आगत देवी का भ्रम होता था। उसकी देह जैसी अनिन्द्य थी वैसे ही वह धीरे-धीरे बोलती थी। राजहंस के हंसी की तरह वह राजा सुर की श्री थी। स्वर्ग में देवियों सहित देव जैसे सुख भोग करते हैं वैसे ही वे उसके साथ अव्याहत सांसारिक सुख भोग करते थे।

सिंहवाह का जीव सर्वार्थसिद्धि विमान की तैतीस सागरोपम की आयु पूर्ण कर वहाँ से च्युत होकर श्रावण कृष्णा नवमी के दिन चन्द्र जब कृत्तिका नक्षत्र में अवस्थित था श्री देवी के कुक्षि में प्रविष्ट हुआ। चार दन्त विशिष्ट श्वेत हस्ती, रात्रि में विकसित श्वेत कमल-सा श्वेत वर्ण वृषभ, केशर युक्त सिंह, स्नानाभिषेक से सुन्दर लक्ष्मी, पंचवर्णीय पुष्पमाला, पूर्ण चन्द्र, सहस्र-

माली सूर्य, पताका युक्त ध्वजदण्ड, जलपूर्ण स्वर्णकलश, कमल भरा सरोव तरंगायित समुद्र, रत्नमय प्रासाद, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि इन चौ महास्वप्नों को गर्भ के प्रभाव से महारानी श्री ने देखा। सुबह महारानी स्वप्नों की बात सुनकर राजा बोले स्वप्नानुसार तुम्हारा पुत्र चक्रवर्ती तीर्थंकर होगा।

नौ महीने साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर वैशाख कृष्णा चतुर्दशी दिन चन्द्र जब कृत्तिका नक्षत्र में अवस्थान कर रहा था और सकल ग्र उच्च स्थान में थे तब श्री देवी ने अज लांछनयुक्त स्वर्ण वर्णीय और शु लक्षणों से भरे एक पुत्र को जन्म दिया। मुहूर्त्त भर के लिए त्रिलोक में ए आलोक व्याप्त हो गया और नारकी जीवों को भी क्षण भर के लिए आन का अनुभव हुआ। शक्र एवं अन्य इन्द्रों का आसन कंपित हुआ। सिंहा कम्पित होने से छप्पन दिक कुमारियाँ भृत्य की तरह वहाँ आकर उपस्थि हुयीं। उन्होंने उनका जन्म कृत्य सम्पन्न किया। शक्र पाँच रूप धारण प्रभु को मेरु पर्वत पर ले गए। त्रेसठ इन्द्रों ने तीर्थों से लाए जल से उ स्नान करवाया। शक्र तब प्रभु को ईशानेन्द्र की गोद में बैठाकर उन्हें स्न करवाकर पूजादि कर इस प्रकार स्तुति की—

हे जगन्नाथ, आज क्षीरोदादि समुद्र का जल, पद्मादि सरोवर का कम और जल, क्षुद्र हिमवतादि पर्वतोंकी औषधि, भद्रशाल वनादि के पुष्प, मलया अधित्यकाओं का चन्दन आपको स्नान करवाकर जीवन की सार्थकता प्र की है। आपका जन्म कल्याणक मनाकर देवों की क्षमता ने आज सार्थक प्राप्त की है। प्रासाद जैसे मूर्ति से शोभित होते हैं मेरु पर्वत भी उसी प्रक आप से शोभित होकर आज श्रेष्ठता और तीर्थस्थल में परिणत हो गया है आपको देखकर नेत्र, आपको स्पर्श कर हाथ आज वास्तव नेत्र और हाथ ह हैं। अवधिज्ञान से यह जानकर आपका जन्म हुआ है अवधि ज्ञान भी आ हे जिन, सार्थक हुआ है। हे भगवन्, स्नान कराते समय आज आप जि प्रकार मेरे हृदय में विराजमान थे उसी प्रकार चिरकाल तक मेरे हृदय अवस्थित रहें।

इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र जातक को लेकर शीघ्र हस्तिनापुर गए औ उन्हें माता श्रीदेवी के पार्श्व में सुला दिया।

राजा सूर ने भी पुत्र जन्मोत्सव मनाया। तीर्थंकर के आविर्भाव से पृथ पर उत्सव ही उत्सव होते रहते हैं। वे जब गर्भ में थे तब रानी श्री ने कु

नामक रत्नराशि देखी थी इसीलिए पिता ने उनका नाम रखा कुन्थु। शक्र द्वारा रक्षित अंगुष्ठ का अमृत पान कर वे क्रमशः बड़े हुए और ३५ धनुष की दीर्घता प्राप्त की। पिता के आदेश से यथासमय उन्होंने राजकन्याओं से विवाह किया। भोग किए बिना भोगावली कर्म नष्ट नहीं होते।

जन्म के पश्चात् २३७५० वर्ष व्यतीत होने पर पिता के आदेश से उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया। राज्य ग्रहण के पश्चात् २३७५० वर्ष व्यतीत होने पर उनकी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। जो पृथ्वी को पूज्य थे ऐसे सूर-पुत्र ने उस चक्ररत्न की पूजा की। जो महत् होते हैं वे भृत्यों को भी सम्मान देते हैं।

तदुपरान्त चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए उन्होंने क्रमशः मगध, वरदाम और प्रभास पति को जय कर लिया। सिन्धु देवी और वैताढ्य राजकुमार कृतमाल देव को उन्होंने स्वयं जीता और उनके सेनापति ने सिन्धु जनपद पर अधिकार कर लिया। सेनापति के तमिस्रा का द्वार खोल देने पर उन्होंने तमिस्रा अतिक्रमण कर आपात जातीय म्लेच्छों पर विजय प्राप्त कर ली। सिन्धु के अन्य जनपदों पर सेनापति द्वारा अधिकार कर लेने पर उन्होंने क्षुद्र हिमवंत कुमारों को जीत लिया। फिर नियमानुसार ऋषभकूट पर्वत पर अपना नाम लिखा और चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए वहाँ से प्रत्यावर्तन किया। वहाँ से वे वैताढ्य पर्वत पर गए जहाँ उभय श्रेणियों के विद्याधर राजाओं ने उन्हें उपहारादि देकर पूजन किया। गंगादेवी और नाट्यमाल देव को उन्होंने स्वयं जीता और उनके सेनापति ने गंगा जनपद स्थित म्लेच्छों को जीत लिया। सेनापति रत्न खण्डप्रपाता गुहाद्वार के खोल देने पर उन्होंने उसमें प्रवेश किया और वैताढ्य पर्वत अतिक्रम कर गए। गंगा के मुहाने पर स्थित नवनिधियों ने स्वयं उनकी शरण ग्रहण कर ली एवं गंगा के ऊपरी जनपद को उनके सेनापति ने जीत लिया। इस प्रकार उन्होंने छः महीने में समस्त भरत क्षेत्र को जीत लिया। चक्रवर्ती कुन्थुनाथ इस भाँति चक्री को जो कुछ करणीय था वह सब कर देव और मनुष्यों से परिवृत होकर हस्तिनापुर लौट आए। देवों और मनुष्यों ने उन्हें चक्रवर्ती पदपर अभिषिक्त किया। वह उत्सव नगर में बारह वर्षों तक चला। २३७५० वर्षों तक कुन्थुनाथ ने चक्री रूप में राज्य भोग किया। [क्रमशः

संकलन

५। आश्रव व संवर ॥

आश्रव और संवर, बाह्य क्रियाओं में नहीं, अन्तर-वृत्ति में है। क्रियाएँ तो बाहर की प्रतीक मात्र है, उसकी परिणति मनोभावों के अनुरूप होता है। इसलिए आश्रव का काम कौन-सा है और संवर का कौन-सा अर्थात् संसार का मार्ग क्या है और मोक्ष का मार्ग क्या है—यह प्रश्न उठता है। क्या बाहर में परिलक्षित होनेवाली आरम्भ एवं अनारम्भ की क्रियाओं में आश्रव-संवर अर्थात् संसार का मार्ग और मोक्ष मार्ग है? इस प्रश्न का उत्तर आचारांग में स्पष्ट एवं बहुत सुन्दर ढंग से दिया गया है—

जे आसवा ते परिस्सवा जे परिस्सवा ते आसवा।

जिस प्रवृत्ति से आश्रव होता है, जो कर्मों के आगमन का हेतु है उस प्रवृत्ति में यदि प्रज्ञा का विवेक का रस डाला गया है, अज्ञान अविवेक को निकाल दिया गया, न्याय नीति और संयम की तन्मयता उसके पीछे रखी गई है तो वही प्रवृत्ति आश्रव का कारण न रहकर संवर का हेतु बन जाती है।

इसके विपरीत सामायिक, दया, पौषध आदि जो धार्मिक प्रवृत्तियाँ संवर का कारण हैं यदि उनमें विवेक नहीं है, ज्ञान की ज्योति नहीं है। केवल परम्परागत अंधानुकरण मात्र है तो वे ही प्रवृत्तियाँ आश्रव का कारण बन जाती है, उनसे कर्म का आगमन ही होता है।

श्रावक एवं श्रमण बन जाना संवर की साधना है किन्तु यदि कर्त्तव्य की पवित्र भावना न रही, सत्-असत् की विवेक ज्योति प्रज्वलित न रही तो वह बाहर में परिलक्षित होनेवाला संवर यथार्थ में आश्रव ही है।

यह है आश्रव और संवर को नापने की महाश्रमण महावीर की स्पष्ट दृष्टि।

सचमुच में आश्रव एवं संवर के कार्यों की कोई पूर्ण सूची न तो बनाई गई है और न बनाई ही जा सकती है। कुछ थोड़े से नाम गिना दिया गए हैं। अन्त में इसी सत्य को शब्दांकित कर दिया—विवेकी प्रबुद्ध पुरुष आश्रव की क्रिया करते हुए भी संवर की स्थिति प्राप्त कर सकता है और अविवेकी व्यक्ति संवर के कार्य में भी आश्रव ग्रहण कर लेता।

—उपाध्याय अमर मुनि

अमर भारती, दिसम्बर १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

कथालोक ।। दिसम्बर १९९०

इस अंक में है जैन कथा 'मुनि अरणिक' (नैनमल सुराना खुशदिल), 'आचार्य असाढ़भूति' (देवेन्द्र कुमार हिरण)।

कुशल निर्देश ।। दिसम्बर १९९०

इस अंक में है 'योगीन्द्र युग प्रधान सद्गुरु श्री सहजानन्दघनजी का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'श्रीमद् राजचन्द्र और गाँधी' (नेमचन्द गाला, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'कृत-कर्मों का पश्चात्ताप' (साध्वी श्री मधुस्मिता), 'युग प्रधान चौथे दादा गुरु जिनचन्द्र सूरि गुणानुवाद गीत' (मिश्रीलाल सरदारमल जैन), 'वज्रस्तम्भ की इतिकथा' (गणेल ललवानी)।

शोधादर्श ।। अक्टूबर १९९०

इस अंक में है 'अहिच्छत्रा—इतिहास के आलोक में' (डा० ज्योतिप्रसाद जैन), 'संस्कृति का स्वरूप' (डा० शशिकान्त), 'जैन दर्शन एवं अन्य भारतीय दर्शनों में मान्य मोक्ष मार्गों का तुलनात्मक विवेचन' (कमला योशी), 'तीर्थंकर महावीर का निर्वाण स्थल : पावानगर' (डा० विनोद कुमार तिवारी), 'काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ जैन कवि—विजयचन्द्र वर्णी' (कुन्दनलाल जैन), 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र—हिन्दी अनुवाद' (प्रकाश चन्द्र जैन)।

श्रमण ।। जुलाई-सितम्बर १९९०

इस अंक में है 'जैन परम्परा का ऐतिहासिक विश्लेषण' (डा० सागरमल जैन), 'सत् का स्वरूप—अनेकान्त वाद और व्यवहार वाद की दृष्टि में' (डा० राजेन्द्र कुमार सिंह), 'भारतीय राजनीति में जैन संस्कृति का योगदान' (इन्द्रेश चन्द्र सिंह), 'आचार्य हरिभद्र का योगदर्शन' (धनंजय मिश्र), 'पश्चिमी भारत के जैन तीर्थ' (डा० शिव प्रसाद), 'सिया and असिया two Prakrit forms and Pischel on Them' (दीनानाथ शर्मा), 'भट्ट अकलंककृत लघीयस्त्रय' (डा० हेमन्त कुमार जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253
Vol. XIV No. 9 TITTHAYARA January 1991
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73